बालमित्र मासिक ग्रन्थमाला—ग्रन्थ ६

❀ श्री ❀

रामायण के उपदेश

—:०:—

सम्पादक
पण्डित राम दहिन मिश्र

लेखक
पाण्डेय बनारसीलाल "विशारद"

[प्रकाशक और विक्रेता
रामनरायन लाल,
प्रयाग

१९२३

प्रथमसंस्करण १२००] [मूल्य ।-)

वक्तव्य

रामायण सब प्रकार की शिक्षाओं का भण्डार है। क्या लोक-सम्बन्धी, क्या परलोक-सम्बन्धी, क्या धार्मिक, क्या सामाजिक और क्या नैतिक, जिस किसी प्रकार की शिक्षा चाहें, आप रामायण से ले सकते हैं। रत्नों की खान में भला रत्नों की कमी हो सकती है?

इस पुस्तक में जो उपदेश लिखे गये हैं उन्हें देखकर यह न समझना चाहिये कि रामायण में ये ही सब से उत्तम उपदेश हैं। रामायण का कोई अंश उपदेश से शून्य नहीं है। यहाँ तक कि पद्यांश तक उपदेश से परिपूर्ण है। पर कल्पवृक्ष के पास जो जिस मनोरथ से जाता है उसका वही मनोरथ पूरा होता है। यद्यपि वह सारी इच्छाओं को पूरी करने में सब प्रकार समर्थ है।

लेखक हमारा विद्यार्थी है। मैंने ही उसे रामायण से लड़कों के लायक उपदेशों को चुन कर लिखने को कहा था। उसने अच्छे ढंग से लिखा है। मैंने उसके लेखों को बालकों के उपयोगी बना कर अपनी इस ग्रंथमाला के योग्य बना लिया है। बालक-बालिकाओं को इस पुस्तक से सदाचार की अच्छी शिक्षा मिलेगी।

सदाचार के सूखे २ उपदेशों से न तो लड़कों को उतना लाभ ही पहुंचता और न उनका ऐसे उपदेशों के सुनने-गुनने में जी ही लगता। उदाहरणों और कार्यों के दृष्टान्तों द्वारा सदाचार की जो शिक्षा दी जाती है वह एक प्रकार अमिट हो जाती है। यही प्रकार इस पुस्तक में अवलम्बन किया गया है।

रामदहिन मिश्र

रामायण के उपदेश

ईश्वर वंदना

सब से पहले रामायण से जो हम लोगों को शिक्षा मिलती है वह यह है कि कोई काम प्रारम्भ करना हो, सब से पहले ईश्वर की वंदना करनी चाहिये। किसी कार्य के प्रारम्भ में ईश्वर का नाम लेना, प्रणाम करना, उनका गुन गाना, हमारे लिये उचित ही नहीं, वरन हमारा कर्तव्य है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी रामायण के आरम्भ में गणेश, शिव, भगवान्, सरस्वती, गुरु आदि की वंदना लिख कर हमको आस्तिकों का पाठ पढ़ाया है।

रामायण के प्रत्येक काण्ड के आरम्भ में जो श्लोक हैं वे इस बात के प्रमाण हैं कि कोई नया कार्य क्यों न हो, आरम्भ में देवता-देवियों को प्रणाम करना मेरा धर्म है। गोस्वामी जी की जितनी वंदना हैं उनमें उनके बालकाण्ड के पाँच सोरठे बहुत उत्तम हैं जिन्हें हम लिखते हैं। उनको तुम्हें कण्ठस्थ—याद कर लेना चाहिये और रोज उनका पहले पाठ कर लेने से सब कुछ मंगल हो सकता है।

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवरवदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि शुभगुणसदन ॥ १ ॥
जासु कृपा सुदयाल, द्रवौ सकल कलिमलदहन।
मूक होंहि बाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन ॥ २ ॥
नील-सरोरुह-श्याम, तरुण-अरुण-वारिज-नयन ।
करहु सो मम उर धाम, सदा चीरसागरशयन ॥ ३ ॥
कुन्द इन्दु सम देह, उमा रमण करुणा अयन ।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन-मयन ॥४॥
बंदौं गुरु-पद-कंज, कृपा-सिन्धु नर-रूप हरि ।
महा-मोह-तम-पुंज, जासु वचन रविकरनिकर ॥५॥

(जिसका स्मरण करने ही से सब काम सिद्ध हो जाते हैं—पार लग जाते हैं, वे हाथी जैसे मुखवाले बुद्धि के राशि—ढेर और अच्छे अच्छे गुणों के घर गणनायक—गणेश जी मुझ पर अनुग्रह—कृपा करें ॥ १ ॥ जिनके प्रसन्न होने से गूँगा वाचाल अर्थात् बहुत बोलने वाला हो जाता है ; पंगु अर्थात् लंगड़ा ऊँचे से ऊँचे बीहड़ पहाड़ पर चढ़ जाता है ; और जो कलियुग के सारे पापों के समूह को जलाने वाले हैं वे भगवान् मुझ पर दया करें अर्थात् प्रसन्न हों ॥ २ ॥ नील कमल के समान जिनका साँवला रंग है ; नये खिले हुए लाल कमल के समान जिनके दोनों नेत्र हैं और जो

सदा क्षीर सागर—दूध के समुद्र में सोते हैं वे भगवान् मेरे मन रूपी मंदिर में वास करें ॥ ३ ॥ कुन्द के फूल और चन्द्रमा जैसे उजले रंग के शरीर वाले, पार्वती के साथ रहने वाले; दया के घर, दीन दुखियों पर दया करने वाले और कामदेव के जलाने वाले महादेव जी मेरे ऊपर कृपा करें ॥ ४ ॥ कृपा के समुद्र, अपने वचन रूपी किरणों से बड़े भारी अज्ञान (मूर्खता) रूपी अन्धकार को नाश करने वाले और मनुष्य की देह धारण किये हुए भगवान् के समान अपने गुरु के चरणों को प्रणाम करता हूँ ॥५॥)

इससे, चाहे आप वही खाता लिखें, चिट्ठी पत्री लिखें, पुस्तक लिखें पर लिखने के पहले ईश्वर का तथा अपने इष्टदेव का नाम लिखें अथवा उनका ध्यान करके अपने मन को साफ कर लें। फिर जो कुछ लिखना हो सो लिखें। ये ही हमारा तुम्हारा सब का पहला कर्तव्य है और आस्तिकता की पहली निशानी। इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिये।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने शंकर स्वरूप गुरु की वन्दना की है। वह इस प्रकार है—

वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ॥
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥१॥

(मैं उन बोधमय और नित्य अर्थात् नाश से हीन शङ्करस्वरूप गुरु को प्रणाम करता हूँ जिस शङ्कर के आश्रय में रह कर टेढ़ा चन्द्रमा भी सब जगह पूजा जाता है।

इसके बाद उन्होंने गुरु जी के चरणों की धूल की महिमा गायी है। उनके इस प्रकार के महिमा-गान से प्रकट होता है कि वे उस धूलि को कितना बड़प्पन देते थे। उसके फल जितने उन्होंने दिखलाये हैं उनसे सचमुच गुरु के चरणों में गाढ़ी भक्ति उपज जाती है। मैं तुम लोगों के लिये उसका सारांश लिख देता हूँ।

मैं गुरु के चरणकमलों की उस धूल को प्रणाम करता हूँ जो सुन्दर, प्रकाश सहित, सरस और भक्ति उपजाने वाली है।

वह अमृत की जड़ है, सुन्दर चूर्ण है और संसार के सारे दुःखों के हरनेवाली है। वह गुरुचरणरज शिव जी के शरीर में लगी हुई भभूत के समान है और सुन्दर मंगल तथा आनन्द को देने वाली है। वह धूल सज्जनों के आईने के समान मन को साफ़ करने वाली और जिसको ललाट पर चंदन की जगह लगाने से सारे गुणों को वश कर लेती है। मतलब यह कि गुरु के चरणों की धूल सब विघ्न बाधाओं को हरनेवाली, सब सिद्धियों को देने वाली और सारे मनोरथों को पूरा करनेवाली है।

इसके आगे गोस्वामी जी गुरु के चरण के नखों को स्मरण करते हैं जिससे मन मलीन होने के कारण उसकी मन्द पड़ी हुई ज्योति बढ़ जाय। देखो, कैसा अच्छा वर्णन है—

गुरु के चरण के नखों की ज्योति मणियों की ज्योति की भाँति है। उसके खयाल करने ही से मन में दिव्य—विमल दृष्टि हो जाती है। उसके उत्पन्न होते ही जैसे सूर्य अंधकार को दूर करे वैसे ही वह हृदय के मोहरूपी अन्धकार को दूर कर देती है। जिसके हृदय मंदिर में यह दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो उसे बड़ा भाग्यवान् समझना चाहिये। उससे हृदय के विमल साफ़ विलोचन—नेत्र खुल जाते हैं और संसाररूपी रात के दोष और दुःख मिट जाते हैं। फिर उस नखमणि की ज्योति से रामचन्द्र के चरित्र रूपी गुप्त—छिपे और प्रकट मणि जो जिस खानि के होते हैं, दिखलायी पड़ने लगते हैं।

गोस्वामी जी फिर आगे गुरु के चरण की धूल के बारे में लिखते हैं—

जैसे सुन्दर सिद्धि का आँजन आँख में लगा कर सुजान—चतुर साधक—सिद्धि करनेवाला, सिद्ध हो जाता है और उसको उस सिद्धाँजन के प्रभाव से जंगल, पहाड़ और जमीन में गड़ा हुआ बहुत सा खजाना खेल ही में दिखलायी पड़ने लगते हैं वैसे ही गुरु पद की कोमल, सुन्दर और अमृत के समान धूल आँखों के सारे दोषों को दूर कर सब वस्तुओं को सुझा देती है।

सचमुच ऊपर का यह वर्णन गुरु के चरणों में गाढ़ प्रेम और अचल भक्ति उपजाने वाला है। ऐसा ही कोई मूर्ख या नास्तिक होगा जिसके हृदय में इससे श्रद्धा का बीज न उगे।

इसके बाद गोस्वामी जी ने आगे चलकर राम और लक्ष्मण ऐसे गुरुभक्त चेलों को नायक बना उनके व्यवहारों से गुरुभक्ति का आदर्श दिखलाया है और बतलाया है कि गुरु के प्रति शिष्यों का क्या कर्तव्य है तथा उनके साथ किस प्रकार बर्तना चाहिये। मैं उस प्रसंग की कुछ चौपाइयाँ यहाँ लिख देता हूँ जिन पर प्रत्येक होनहार बालक का ध्यान रखना चाहिये।

परम विनीत सकुच मुसुकाई।
बोले गुरु अनुशासन पाई॥

नाथ लषन पुर देखन चहहीं।
प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जो राउर अनुशासन पाऊँ।
नगर दिखाइ तुरत लै आऊँ॥

(बहुत सकुचा कर और विनीत होकर मुसुकाते हुए रामचन्द्र गुरु जी की आज्ञा पाकर बोले कि नाथ, लक्ष्मण नगर देखना चाहते हैं पर आपके संकोच और डर से नहीं कहते। अगर आज्ञा दें तो मैं लक्ष्मण को नगर दिखा कर तुरत लौटा ले आऊँ।)

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता।
चले लोक-लोचन-सुख-दाता॥

(लोगों के नेत्रों को आनन्द देने वाले दोनों भाई राम लक्ष्मण मुनि को प्रणाम करके चले।)

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं।
जानि विलम्ब त्रास मन माहीं॥

(नगर के सब कौतुक देख करके गुरु के पास चले। विलम्ब होने से उनके मन में डर समाया हुआ था।)

सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाय।
गुरु-पद-पंकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाय॥

निशि प्रवेश मुनि आयसु दीन्हा ।
सब ही सन्ध्या बंदन कीन्हा ॥

(भय और प्रेम के साथ अत्यन्त नम्र और सकुचे हुए दोनों भाई गुरु की आज्ञा पाकर बैठे । साँझ होते देख गुरु ने आज्ञा दी और सभी ने सन्ध्यावंदन किया ।)

मुनिवर शयन कीन्ह तब जाई ।
लगे चरण चापन दोउ भाई ॥

(मुनि ने जाकर शयन किया तब दोनों भाई उनके पैर दबाने लगे ।)

ते दोउ बंधु प्रेम जनु जीते ।
गुरु-पद-कमल पलोटत प्रीते ॥
बार बार मुनि आज्ञा दीन्हा ।
रघुबर जाइ शयन तब कीन्हा ॥

(प्रेम को वश किये हुए के से दोनों भाई गुरु के चरण को दबाने लगे । बार बार मुनियों ने आज्ञा दी तब जाकर राम ने शयन किया ।)

उठे लषण निशि बिगत सुनि, अरुण शिखा धुनि कान ।
गुरु ते पहिले जगत पति, जागे राम सुजान ॥

सकल शौच करि जाइ नहाये।
नित्य निबाहि गुरुहिं सिर नाये॥
समय जानि गुरु आयसु पाई।
लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

(लक्ष्मण जी मुर्गे की बोली सुनकर और रात बीती जानकर जाग पड़े और गुरु के पहले रामचंद्र जी उठे। सवेरे के सब काम निपटा कर स्नान किया और संन्ध्यावंदन करके गुरु को आकर प्रणाम किया। समय जानकर गुरु जी ने आज्ञा दी और दोनों भाई फूल लेने चले।)

राम कहा सब कौशिक पाहीं।
सरल सुभाव छुआ छल नाहीं॥

(रामचन्द्र ने गुरु जी से जाकर सब कुछ कह सुनाया। क्योंकि वे बड़े सरल स्वभाव के थे और उनके मन में कुछ छल नहीं था।)

अब तुम लोग खयाल करो कि इन चौपाइयों से क्या शिक्षा मिलती है और राम लक्ष्मण ने कौन से ऐसे काम किये थे जो तुम्हारे लिये आदर्श हैं और गुरुभक्ति के पाठ पढ़ाते हैं।

(१) गुरुजनों की आज्ञा पाकर बोलना। (२) बड़े विनय और लेहाज के साथ बोलना। (३) सदा गुरु का भय मानना। (४) गुरु

की आज्ञा के अनुसार अपना काम निपटा कर शीघ्र लौट आना। (५) विलम्ब होने से डरता रहना। (६) किसी कारण वश कुछ विलम्ब हो भी जाय तो उसके लिये अपने को अपराधी समझना और संकोच करना। (७) सन्ध्या होते ही संध्यावंदन करना। (८) शयन वा विश्राम करने के समय गुरु की सेवा करना और उनके कहने पर आप आराम करना। (९) भोर के समय गुरु से पहले उठना। (१०) प्रातःकाल के सारे कामों को निपटा कर गुरु को जाकर प्रणाम करना। (११) गुरु के पूजा पाठ की सामग्री उनकी आज्ञानुसार लाना और उनकी और आज्ञाओं को बजा लाना। (१२) मन में किसी प्रकार का छल कपट वा गुरु से दुराव न रखना। (१३) किसी विषय में घमंड न करना। (१४) सदा आज्ञाकारी बना रहना।

ये चौदहों अनमोल रत्न हैं। इन चौदहों अनमोल उपदेशों का स्मरण प्रत्येक विद्यार्थी और प्रत्येक गुरुभक्त को करना चाहिये।

गुरु के पदरज की कुछ ऐसी ही महिमा है कि उसके प्रसाद से—कृपा से चारो पदार्थ—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, सदा हाथ में रहते हैं।

श्रीगुरु-चरण-सरोजरज, निज मन-मुकुर सुधार।
वरणौं रघुवर विमल यश, जो दायक फल चार॥

जहाँ कहीं हमारे मन मुकुर—मन के आईने में मैल पैदा हो जाय चटपट गुरुदेव के चरणकमलों की धूरि से उसे साफ़ कर

लेना चाहिये। शीशा जितना ही विमल होगा उतना ही उसमें स्वच्छ प्रतिबिम्ब—साफ़ परछाहीं, पड़ेगा। इसलिये सदा सब लोगों को अपने मनमुकुर को साफ़ करने के लिये गुरुपदरज की जरूरत है। नहीं तो अज्ञान की अँधेरी रात में सत्यासत्य का ज्ञान होना बड़ा ही कठिन है।

यह हमेशः खयाल रहे कि—

गुरु के वचन प्रतीति न जेही।
सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही॥

(जिसको अपने गुरु के वचन में विश्वास नहीं है उसे सपने में भी सुख और सिद्धि नहीं मिलती।)
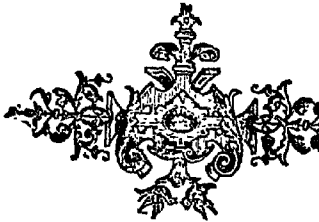
माता-पिता की भक्ति

रामचन्द्र के समान भला कौन माता-पिता का भक्त होगा? गोस्वामी जी ने भी मातृपितृभक्ति का रामायण में अच्छा चित्र खींचा है। तुम लोग देखो कि राम ने माता-पिता की भक्ति दिखलाने के लिये क्या क्या न किया।

क्या बालक राम-लक्ष्मण को अयोध्या अच्छी नहीं लगती थी? माता की मुलायम गोदी और पिता की प्यारी जंघा क्या उनके लिये सुखदायक नहीं थी? क्या तरह तरह की सवारियों से उनका जी ऊब गया था? क्या अयोध्या में उनकी शिक्षा आदि का इन्तज़ाम नहीं हो सकता था? फिर क्या कारण कि अयोध्या से पैदल चल कर विश्वामित्र के साथ बक्सर जा पहुँचे? जङ्गल को अयोध्या और उनकी कुटी को राजमहल बनाया? इन सब का कारण केवल पिता की आज्ञा का पालन करना था। नहीं तो रामचन्द्र को क्या पड़ी थी कि लड़कपन में ही इतना दुःख झेलने को चल खड़े होते।

अभी अभी पिता ने जिसे सब भाँति सुयोग्य बताया है।

भये राम सब बिधि सब लायक।

जिसको गुरु वशिष्ठ जी के द्वारा राजतिलक देने का संवाद भेजा है।

भूप सजेउ अभिषेक समाजू।
चाहत तुमहिं देन युवराजू॥

गुरु ने राज तिलक के पहले जिसको नियम रखने के लिये कहा।

राम करहु तुम संयम आजू।

सारी अयोध्या जिस रामचन्द्र के राज-तिलक की बात सुन कर फूले अंग नहीं समाती। माता कैकेयी भी रामचन्द्र को प्राणों से प्यारा कहती है—

प्रानते अधिक राम प्रिय मोरे।

और उनके राजतिलक की बात सुन कर मुँह माँगा इनाम देने की बात कहती है—

राम तिलक जो साँचहु काली।
देउँ माँगु मन भावत आली॥

जब कि कोई यह नहीं कह सकता कि राम का राज्यतिलक अनुचित रीति से होता था; राम अपराधी थे; उनका वन ही

जाना उचित था; राम वन जाते नहीं तो करते क्या। यहाँ तक कि लक्ष्मण भी उनका पक्ष लेकर पिता तक के साथ युद्ध करने को तैयार हो गये। पिता ने भी भर मुँह उन्हें वन जाने की आज्ञा नहीं दी। उन्होंने अपने मन में राम को वन भेजने का विचार तक भी नहीं किया बल्कि वे इसके एक तरह बाधक हुए।

राउ राम राखन हित लागी।
बहुत उपाय कीन्ह छल त्यागी॥

(राजा ने रामचन्द्र को रखने के लिये छल छोड़ कर बहुत से उपाय किये।)

इतने पर भी रामचन्द्र वन जाने से नहीं रुके। क्यों? इस लिये कि पिता ने आज्ञा दी थी? नहीं। उन्होंने तो भर मुँह कभी वन जाने को नहीं कहा बल्कि वन जाने का इरादा भी नहीं किया। इसका कारण कुछ और ही था।

मँथरा ने जब कैकेयी की बुद्धि पलट दी तब राजा से उसने दो वरदान माँगे। राजा ने देना स्वीकार कर लिया। बेचारे राजा दशरथ को क्या मालूम कि इस वरदान से राम वनवासी होंगे। रामचन्द्र ने जब पिता को धर्मसंकट में पड़े देखा तब उन्होंने विचारा कि जिस भाँति हो पिता का वचन कभी झूठा नहीं होना चाहिये। माता कैकेयी का भी मन रहे। यही सोच और अपना पुत्र होने का धर्म समझ वन जाने को तैयार हो गये।

उन्होंने जाना कि पिता की आज्ञा क्या, हमारा कर्तव्य है उनकी बात को झूठी न होने देना। यही पुत्र का धर्म है।

राजतिलक की तैयारी में लगी हुई कौशल्या ने इस दुखद समाचार को सुना तो उनकी सारी आशा पर पानी फिर गया। उन्होंने अधीर होकर कहा कि

जो केवल पितु आयसु ताता।
तो जनि जाहु जानि बड़ि माता॥

(अगर वन जाने में केवल पिता की ही आज्ञा हो तो मत जावो। मैं मना करती हूँ। क्योंकि पिता से माता की आज्ञा बढ़ कर है।)

जब उनको यह बात मालूम हुई कि पिता की ही इसमें बात नहीं है। कैकेयी भी चाहती हैं कि मैं वन जाऊँ। यह सुनते ही कौशल्या ने कहा कि

जो पितु मातु कहै वन जाना।
तो कानन सत अवध समाना॥

(अगर माता पिता दोनों ही वन जाने को कहते हों तो वन ही तुम्हारे लिये सैकड़ों अयोध्या के बराबर है।

सुनते ही रामचन्द्र को बड़ी ख़ुशी हुई। माता की आज्ञा सिर माथे पर ले ली।

बिना अपराध, बिना किसी प्रकार के सुख दुख का अनुभव किये रामचन्द्र जी का वन जाना, वह भी दो चार दिन के लिये नहीं, चौदह वर्ष के लिये, इस पर भी तपस्वी का वेष धर कर और उदासी होकर, माता पिता की भक्ति का सब से ऊँचा आदर्श है। राम से बढ़ कर माता पिता की आज्ञा पालन करने वाला दूसरा पुत्र कौन हो सकता है? क्या हम तुम उनके ऐसे होने की कोशिश नहीं कर सकते?

भ्रातृभक्ति

राजा दशरथ ने रामचन्द्र को वनवास दिया और भरत को अयोध्या का राज्य। रामचन्द्र ने केवल वन जाना ही स्वीकार नहीं कर लिया वरन चट पट तपस्वी का बाना बना वन की राह ली। पर भरत ने एक दम इसका उलटा किया। राज्य करना तो दूर रहे, ऐसी इच्छा करना, उन्होंने महापाप समझा। रामचन्द्र ने वनवास पा कर भी महारानी कैकेयी को एक शब्द नहीं कहा और भरत ने माता कैकेयी की कृपा से ही राज्य पा कर उसे खूब खरी खोटी सुनायी। पर इससे क्या कोई भरत को दोषी कह सकता है? नहीं। क्योंकि ऐसा करने से न तो पिता का अनादर होता था और न माता का। वह तो भरत की भ्रातृभक्ति थी और राम के वियोग की विकलता।

फिर रामचन्द्र को वनवास दे अपने विधवापन को ले भरत पर प्रजा पालन का बोझ डाल माता ने कौन सा हित किया था जो भरत उसके लिये एहसानमंद होते? कहाँ तो रामराज्य के

प्रेमी, भ्रातृभक्ति की साक्षात् मूर्ति भरत और कहाँ लोक-पर-लोक बिगाड़ने वाला राज्य का बंधन ! सो भी अनुचित रीति से मिला हुआ !! कभी भरत को यह सुख देने वाला नहीं हो सकता था।

यह सच्ची बात है कि १४ वर्ष तक भरत ने राज-काज देखा पर किस रीति से और क्यों ? रामचन्द्र की आज्ञा लेकर और उनका प्रतिनिधि हो कर और उनके चरण कमल की खड़ाऊँ को सिंहासन पर रख कर। उन्होंने सारे सुखों को लात मार कर और नन्दीग्राम में पूरे तपस्वी बन कर राम जी के राज्य को सम्हाला। यदि वे ऐसा न करते तो रामचन्द्र के राज्य के नाशक होते। अहा ! रामचन्द्र के चरणों में भरत की कैसी गाढ़ भक्ति, कैसा अटल प्रेम और रामचन्द्र का भी भरत पर कैसा विश्वास था !

भरत सरिस को राम सनेही।
जग जपु राम राम जपु जेही ॥

(भरत के ऐसा राम का प्रेमी और कौन होगा कि संसार जिस राम को जपता है वही राम जिसको जपते हैं)

एक बार भगवान् रामचन्द्र ने अपने मुख से भरत के विषय में लक्ष्मण को उपदेश देते समय जो अपना विचार प्रकट किया था उसे सुनो तो तुमको जान पड़ेगा कि दोनों में कैसे पहले दर्जे की प्रीति थी। जब कि भरत जी राम जी को वन से लौटा लाने

के लिये सब को साथ लिये हुए उनके आश्रम में पहुँचे तब क्रोध से लक्ष्मण ने भरत के बारे में बहुत कुछ बुरा भला कहा। जिस भाव से उन्होंने कहा था उसी को हृदय से निकाल देने के लिये रामचन्द्र लक्ष्मण से कह रहे हैं।

लक्ष्मण, सुनो। संसार में भरत के समान और कोई दूसरा आदमी नहीं। यदि भरत को ब्रह्मा, विष्णु और शिव का भी पद मिल जाय तो भी जिस प्रकार मट्ठे के छींटों से क्षीरसागर—दूध का समुद्र, नहीं फट सकता उसी प्रकार भरत के हृदय में विकार—इन पदों के पाने का लोभ, नहीं उपज सकता। मेरा तो विश्वास है कि यदि सूर्य अँधेरे में छिप जाय, बादलों में आकाश मिल जाय, गाय के खुर के जल में अगस्त मुनि डूब जाँय, पृथ्वी अपनी स्वाभाविक क्षमा को छोड़ दे, और तो क्या, मच्छड़ों की फूँक से सब से बड़ा मंदर पहाड़ उड़ जाय तो उड़ जाय और सारी न होने वाली बातें हो जाँय पर मजाल क्या कि कोई राज्य-पद भरत में घमंड पैदा कर दे। बस केवल यही बात जान लो।

शुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।

(भरत के समान कोई सच्चा और साधु भाई नहीं हो सकता।)

क्यों न हो, इसे कहते हैं भाई और भाई का विश्वास। क्या भारत की प्रत्येक सन्तान को यह उचित नहीं कि भगवान के इन वचनों को ध्यान करके भाई २ में अपार प्रेम और अटल विश्वास रक्खें।

जब भरत जी राम के आश्रम में पैठते हैं तब की तुम बात सुनो ।

हरषहिं निरषि राम पद अंका ।

(राम जी के चरण के चिन्हों को देख कर खुश होते हैं ।)

रज सिर धरि हिय नयन लगावहिं ।

(धूल (राम जी के चरणों के तले की) सिर पर रखते हैं और आँखों में लगाते हैं)

पाहि नाथ कहि पाहि गुसांई ।
भूतल परे लकुट की नांई ॥

(रामचन्द्र जी को देखते ही, महाराज रक्षा कीजिये, नाथ बचाइये कह कर पृथ्वी पर जैसे खड़ा लट्ठ छोड़ देने से गिर पड़ता है वैसे भरत जी गिर पड़े ।

फिर रामचन्द्र जी का मिलना तो और गजब का था। भरत का राम पर जैसा प्रेम था उससे उन्नीस राम जी का भी भरत पर प्रेम न था। भरत जी को उस प्रकार पृथ्वी पर पड़ते ही रामचन्द्र भी अधीर हो उठे। उस समय रामचन्द्र जी की कैसी दशा थी।

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा ।
कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥

(प्रेम से व्याकुल होकर रामचन्द्र इस प्रकार उठे कि न तो उनके कपड़े का ठिकाना रहा न धनुष का और न तीर का—ये जहाँ के तहाँ गिर पड़े)

बरबस लिये उठाइ उर, लाये कृपानिधान ।

(राम भरत को पृथिवी पर से उठाने लगे पर वे प्रेम के मारे उठते न थे किन्तु राम कब मानने वाले थे उन्होंने जोर करके भरत को उठाया और हृदय से लगा लिया ।)

ऐसा क्यों न रामचन्द्र जी करें। जिस भरत का यह विचार था—

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा ।
सब ते सेवक धर्म कठोरा ॥

(मेरा तो ऐसा कर्तव्य था—मुझे ऐसा जरूर चाहता था कि रामचन्द्र जी से मिलने को पैर के बदले सिर के बल जाऊँ क्योंकि सेवक का धर्म सब से कठिन है)

उस भरत के लिये रामचन्द्र का इस प्रकार अधीर हो जाना उचित ही है।

भरत जी तो भ्रातृभक्ति में सब से चढ़े ही चढ़े थे पर लक्ष्मण जी की भी भ्रातृभक्ति प्रशंसा करने के लायक थी। उन्होंने अयोध्या से रामचन्द्र जी के चलते ही उनका साथ दिया। उन्होंने राजपाट का सुख छोड़ा, घर द्वार छोड़ा और नयी ब्याही बहू को घर में लाकर छोड़ा। इन सबों की ओर उन्होंने कुछ भी ख़याल नहीं

किया। यहाँ तक कि मना करने पर भी राम के साथ ही १४ वर्ष के वनवास के दुख झेलने को तैयार हो गये और साथ रह कर राम के सदा दहिने हाथ बने रहे। इससे बढ़कर भाई की भक्ति और क्या हो सकती थी। भ्रातृभक्ति इसी का नाम है।

लक्ष्मण जी जैसे रामचन्द्र के अनुगामी—पीछा करने वाले थे वैसे ही शत्रुघ्न भी राम को सब कुछ समझते थे और उनके चरणों में अपनी अगाध भक्ति को ढाल दिया था। और रामचन्द्र! वे तो तीनों ही भाइयों का लाड़ प्यार करते थे। उनका दुलार रखना रामचन्द्र का एकमात्र काम था। इस प्रकार सब भाई एक दूसरे के साथ हृदय से मिले हुए थे। रामायण इस भ्रातृभक्ति का नमूना हमारे सामने आज भी रखता है पर दुःख है कि हम इस ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते।

सत्यभाषण—सच बोलना

सच बोलने के सम्बन्ध में विशेष कुछ लिखने की जरूरत नहीं जबकि रामायण भर में जितने पात्र हैं प्रायः सब के सब सत्य प्रतिज्ञा वाले और सच्चरित्र हैं। तुम लोग दशरथ जी की सत्य प्रतिज्ञा ही पर ख़याल करो कि उन्होंने अपने प्राणों से प्यारे रामचन्द्र को वन में भेज दिया पर जो बात हार चुके थे उसको नहीं तोड़ा। अपने वचन की रक्षा के लिये जीवन मूल राम को १४ वर्ष का वनवास देने से मुख नहीं मोड़ा। प्राण गये पर वचन नहीं गया। सच है—

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाइ बरु वचन न जाई॥

(रघुकुल की यह पुरानी रीति चली आती है कि प्राण भले ही चले जाँय पर वचन नहीं जाय।)

तुम लोग यह कह सकते हो कि राजा दशरथ ने तो राम को वन जाने के विषय में एक शब्द भी नहीं कहा वरन् उनको रोकने ही का यत्न किया। फिर वे कैसे सत्यवादी हुए। इस बारे में तुम

से यह कहना है कि राजा ने अपने मुँह से भले ही कुछ न कहा हो पर उनका चुप लगा जाना इस बात को साफ कह रहा है कि उन्होंने राम को वन भेजना ठान लिया। यदि ऐसी बात न होती तो वरदान माँगने के समय ही कह देते कि मैं तुम्हें वनवास का वरदान नहीं दूँगा। यदि राजा चाहते कि राम वन न जाँय तो वे कैकेयी को ऐसी फटकार बताते कि वह अपना वचन लौटा लेती और वनवास के बारे में फिर अपना मुँह नहीं खोलती। पर राजा ने ऐसा नहीं किया। वे कैकेयी से यह बात कहते हैं—

माँगु माथ अबही देउँ तोहीं।
राम बिरह जनि मारसि मोहीं॥
राखु रामकहँ जेहि तेहि भाँती।
नाँहित जरिहि जन्मभरि छाती॥

(अभी सिर माँग तो मैं दे दूँ पर राम के विरह में मुझे मत मार। जिस किसी तरह राम को रख, नहीं तो जन्म भर छाती जलती रहेगी।)

यदि उनको अपना वचन पालना नहीं रहता तो वे कभी न तो अपना सिर देने को तैयार होते और न कैकेयी का निहोरा ही करते। जो सत्यवादी नहीं वह क्या कभी इस तरह काम कर सकता है? नहीं। उन्होंने जो रामचन्द्र को रोकने का उद्योग किया वह राम पर प्रेम होने के कारण। वे उस समय बहुत विकल हो गये थे।

उनकी उस समय कुछ भी सुध बुध नहीं थी। उनका यह काम उस समय के लिये स्वाभाविक ही था। यदि वे चाहते और दृढ़ होकर रामचन्द्र को रोक रखते तो वे ऐसे नहीं थे कि पिता का वचन टाल कर वन चले जाते। रामचन्द्र ने समझ लिया था कि पिता की इच्छा है पर प्रेम के कारण अधीर हो रहे हैं और इस विषय में कुछ नहीं बोलते। इसी से तुम समझ सकते हो कि अपना वचन पूरा करने के सिवा राजा का और कोई दूसरा मतलब नहीं था। राजा इस बात को अच्छी तरह समझते थे।

नहिं असत्य सम पातक पुंजा।
गिरि सम होहि कि कोटिक गुंजा॥

(असत्य—झूठ के बराबर और कोई पाप का समूह नहीं है। करोड़ों घुँघुचियाँ क्या पहाड़ के बराबर हो सकती हैं ?)

कैकेयी के मुख से तुलसीदास जी ने जो यह कहवाया है उसके तुल्य ही राजा दशरथ थे।

तन तिय तनय धाम धन धरणी।
सत्यसन्ध कहँ तृण सम बरणी॥

(देह, स्त्री, पुत्र, घर, धन, पृथ्वी आदि सब कुछ सत्य प्रतिज्ञा करनेवालों के लिये घास के बराबर हैं।)

जब तुलसीदास जी ने वचन पालने के लिये भगवान् का बार बार अवतार कराया है फिर यह कैसे कोई कहे कि सत्य का

उपदेश देना उनका मतलब नहीं था। सत्य ही सब कुछ है और सत्य ही से सब कुछ पुण्य होता है। इसीलिये लिखते हैं—

सत्य मूल सब सुकृत सुहाये।
वेद पुराण विदित मुनि गाये॥

(सत्य ही से सब पुण्य होते हैं ऐसा वेद पुराण में लिखा है और मुनि लोग भी यही बात कहते हैं।)
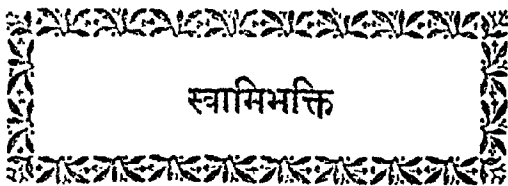
स्वामिभक्ति

गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने हनुमान जी के चरित्र का चित्र खींचने में भली भाँति यह दिखला दिया है कि एक सच्चे स्वामिभक्त के लिये क्या क्या कर्त्तव्य है। अपने स्वामी का कार्य करने के लिये कहाँ तक दुःख और अनादर का बोझ उठाना पड़ता है, बंधन में पड़ कर भी स्वामी का कार्य कैसे किया जाता है और स्वामी की आज्ञा पालने का ध्यान सेवक को कितना रखना चाहिये। इन सब बातों का गोस्वामी जी ने रामायण में अच्छा खाका खींचा है।

रामचंद्र जी ने समझा था कि हनुमान जी से ही सीता के पता लगाने का काम होगा इसी से पीछे हनुमान जी को बुला, समझा बुझाकर अँगूठी दी थी। उन्होंने समझ लिया था कि यही सच्चा स्वामिभक्त मालूम होता है। रामचन्द्र जी के इस विश्वास को हनुमान जी ने सब जगह बजा रक्खा है। जब वे समुद्र पार कर रहे थे तब मैनाक पहाड़ ने समुद्र से निकल उनसे कहा कि थोड़ा सा आराम कर लीजिये तो आगे जाइये। पर हनुमान ने अपने आराम

की कुछ परवाह नहीं की। क्यों? इसलिये कि वे स्वामी का कार्य करने जा रहे थे। वे कहते हैं कि

रामकाज कीन्हें बिना, मोहिं कहाँ विश्राम।

(जब तक रामचन्द्र का काम नहीं होता तब तक मुझे विश्राम कहाँ है)

सच पूछिये तो हनुमान ने राम के कार्य के लिये अपने को एक प्रकार भुला ही दिया है।

स्वामी श्रीरामचन्द्र के कार्य के लिये विकट विशाल समुद्र को पार किया; लंका में खोज ढूँढ कर सीता का पता लगाया और रामचन्द्र के विरह की दशा का वर्णन करके जानकी को धीरज धराया। उनकी आज्ञा लेकर रावण के बगीचे के मनमाने फल खाये और पेड़-पौधे तोड़े-मरोड़े। इस तरह अपने कामों से नगर में पैठने की खबर दी। रावण के पुत्र अक्षयकुमार को और २ राक्षसों के साथ मारा। पहले पहल इन्हीं कामों से रामचन्द्र के दूत होने का प्रमाण दिया और रावण के मन में रामचन्द्र का दबदबा जमा दिया। रावण का बड़ा लड़का मेघनाद उनसे भिड़ा पर पार न पाया। अन्त में उसने नागफाँस चलाया। उसकी प्रतिष्ठा रखने के लिये हनुमान जी बंधन में पड़ गये। उनका बाँधा जाना स्वामी के कार्य से खाली न था। उन्होंने रावण की सभा देखनी चाही और उसका भीतरी भेद लेना जरूरी समझा। उन्होंने समझा कि रावण की सभा के लोगों की रीति नीति

अपने स्वामी को जनाऊँ तो उससे बड़ा काम निकलेगा। शत्रु के संहार में सहायता पहुँचाने ही के लिये उन्होंने अपने को बंधन में डाला। गुसाँई जी ने लिखा है—

जासु नाम ले सुनहु भवानी।
भव-बंधन काटहिं नर ज्ञानी॥
तासु दूत बंधन तर आवा।
प्रभु कारज लगि आपु बँधावा॥

(शिव जी कहते हैं कि हे पार्वती, जिसका नाम लेकर ज्ञानी आदमी संसार का बंधन काटते हैं अर्थात् इससे संसार से छुटकारा पा जाते हैं उसका दूत बंधन में पड़ गया। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। हनुमान जी ने अपने स्वामी के कार्य के लिये ही अपने को बंधन में डाला।)

उन्होंने रावण की सभा में जाकर उसके सारे प्रश्नों का मुँह तोड़ उत्तर दिया। इतना ही नहीं वरन् भय दिखला कर भगवान के शरण में जाने का उपदेश देने से भी नहीं हिचके।

हनुमान जी ने अपनी करनी से राक्षसों को डराना चाहा। इसमें रावण के नौकरों ने भी हाथ बटाया, उनके मन की सजा दी। घी और तेल में चुपड़ कर बहुत से कपड़े लत्ते उनकी पूँछ में लपेटे गये। आग धरा दी गयी। अब क्या पूछना था। उन्होंने उलट पुलट कर सारी लंका को छार खार कर दिया पर किसी के किये

कुछ न हो सका। फिर जानकी के पास जा, उनसे चूड़ामणि लिया और समुद्र पार होकर सारे बंदरों की जान में जान डाली।

वहाँ से सब को साथ लिये दिये भगवान् रामचन्द्र जी से मिले और चूड़ामणि दे महारानी के दुःख का वर्णन किया। उस समय उनका गला भर आया था। कहते हैं—

सीता कर दुख विपति विशाला।
विनहिं कहे भल दीन दयाला॥

(सीता के दुःख का कुछ पारावार नहीं है। हे दीनदयाल! उसका न कहना ही अच्छा है।)

सीता जी की ओर से प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

वेगि चलिय प्रभु आनिये, भुज बल खल दल जीत।

(प्रभु, जल्दी चलिये और भुजाओं के बल से दुष्ट राक्षसों को मार कर सीता को लाइये।)

रामचन्द्र जी हनुमान के ऐसे कठिन कार्य कर आने, सीता का समाचार सुनाने और आगे उचित काम करने के लिये कहने आदि से हनुमान जी की ओर उनकी बड़ी श्रद्धा हुई। उनके कार्यों से वे दब गये। उन्होंने अपने मुख से कहा—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥

प्रति उपकार करौं का तोरा।
सम्मुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उऋण मैं नाहीं।
करि विचार देखेउ मनमाहीं॥

(हे हनुमान जी, कोई भी देवता, मुनि और आदमी नहीं है जो तुम्हारे समान उपकारी हो। मेरा मन तो सङ्कोच के मारे तुम्हारे सन्मुख होता नहीं। मैं तुम्हारा क्या उपकार करूँ? मैंने तो मन में विचार करके देख लिया कि जो तुमने मेरे लिये किया है उससे मैं उऋण हो ही नहीं सकता।)

सचमुच लंका की लड़ाई में हनुमान जी ने जो वीरता दिखायी, लक्ष्मण की शक्ति छुड़ाने के लिये जो उद्योग किया और जो तरह तरह के कठिन कार्य किये, उन सब का क्या प्रत्युपकार हो सकता है?

महारानी जानकी जी ने हनुमान जी से अपना सारा दुखड़ा कह सुनाया तब उनका हृदय दुखी हुआ। जानकी जी ने बिलख कर कहा कि मुझे यहाँ से जल्द छुड़ावो, नहीं तो मेरा प्राण रहना कठिन है। उस समय उन्होंने कहा—

अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई।
प्रभु आयसु नहिं राम दुहाई॥

(माता, मैं चाहूँ तो तुम्हें अभी लिवा ले जाऊँ पर स्वामी रामचन्द्र की ऐसी आज्ञा नहीं है।)

आज्ञापालन का कैसा बड़ा खयाल है। स्वामी की आज्ञा को जानकी के दुख भरे वचन नहीं दबा सके।

तुलसीदास जी ने रामायण में सेवक के कैसे उत्तम धर्म लिखे हैं जो तुम्हें सदा ध्यान में रखने लायक हैं।

भानु पीठ सेइय उर आगी।
स्वामिहि सेइय सब छल त्यागी॥

(सूर्य का पीठ से, अग्नि का हृदय से—आगे से और स्वामी का सब प्रकार से छल छोड़कर सेवन करना चाहिये।)

सिर भरि जाउँ उचित अस मोरा।
सब ते सेवक धर्म कठोरा॥

(मेरे लिये तो ऐसा उचित है कि पैर के बदले सिर के बल जाऊँ क्योंकि सेवक का धर्म सब से कठोर है।)

हनुमान जी के इस संक्षिप्त चरित्र से तुम लोग स्वामिभक्ति की अच्छी शिक्षा ले सकते हो। भला इस प्रकार के कर्तव्य-परायण—अपने कर्तव्य करने वाले सेवक की सेवा के कार्य से किसको शिक्षा नहीं मिल सकती?

नम्रता—अपने को छोटा मानना

जिन्होंने रामायण, विनयपत्रिका, गीतावली ऐसे अपूर्व, अलौकिक काव्य के सारे अंगों—रस, भाव, अलंकार से भरे और एक से एक बढ़कर ग्रंथ, जिनकी प्रशंसा सारे संसार में है और जो लोकप्रिय ऐसे हैं कि महल से झोपड़ी तक पढ़े और पूजे जाते हैं, बनाये और जिनकी बुद्धि तथा कविता की प्रशंसा सारा संसार खुले दिल से करता है उन गोस्वामी श्री तुलसीदास जी से बढ़कर कौन कवि और ग्रन्थ बनाने वाला हो सकता है। इस पर भी उन्होंने रामायण बनाने के समय बड़ी नम्रता दिखलायी है। यहाँ तक कि उन्होंने सब प्रकार अपने को हीन से हीन बना दिया है। वे अपने बारे में लिखते हैं—

मति अति नीच ऊँच रुचि आछी।
चहिय अमिय जग जुरै न छाँछी॥
छमिहहिं सज्जन मोर ढिठाई।
सुनिहहिं बालवचन मन लाई॥

जो बालक कह तोतरि बाता।
सुनहि मुदित मन गुरु पितु माता॥

(मेरी बुद्धि बड़ी नीची है और इच्छा बड़ी ऊँची। चाहता हूँ अमृत, पर मट्ठा भी नहीं मिलता। जो सज्जन हैं वे मेरी ढिठाई को क्षमा करेंगे और मन लगाकर बालक के वचन को सुनेंगे। बालक जो तोतली बानी बोलता है उसको सुनकर पिता माता और गुरु प्रसन्न होते हैं।)

भाषा भनित मोर मति थोरी।
हँसिबे योग्य हँसे नहिं खोरी॥

(एक तो यह भाषा की कविता ठहरी, और दूसरे मैं छोटी बुद्धि का मनुष्य ठहरा। यह तो हँसने ही लायक काम है। फिर जो लोग देखकर हँसे तो इसमें उनका कुछ दोष नहीं है।)

कवि न होंउ नहिं चतुर प्रवीना।
सकल कला सब विद्या हीना॥

(न मैं कवि हूँ, न बात कहने में कुशल ही हूँ और न चतुर ही हूँ। क्योंकि न तो मुझ में कोई कला-गुण है और न कोई विद्या ही।)

कवित विवेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहों लिखि कागद कोरे॥

(कविता का कुछ भी विवेक—विचार मुझ में नहीं है। यह बात मैं मुँह देखी नहीं कहता। कोरे क़ाग़ज़ पर लिख कर—प्रतिज्ञा करके, शपथ करके कह सकता हूँ।)

ऊपर की तुलसीदास जी की कही हुई उक्तियों को पढ़कर तुम लोग जान सकोगे कि गोस्वामी जी ने सब प्रकार योग्य होकर भी अपने को कितना नीच और कितना नम्र बनाया है। नम्रता का इससे बढ़कर दूसरा नमूना क्या हो सकता है। हम तुमको इस आदर्श को सदा सामने रखना चाहिये।

तुलसीदास जी जैसे आप नम्रता के नमूने थे वैसे ही अपने नायक—रामचन्द्र जी को जो सारे संसार के मालिक परमेश्वर थे, नम्रता का नमूना बना करके छोड़ा है। वे रामचन्द्र के मुख से कहवाते हैं—

हमहिं तुमहिं सरबस कस नाथा।
कहहु तो कहाँ चरण कहँ माथा॥
राममात्र लघु नाम हमारा।
परशु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥
देव एक गुण धनुष हमारे।
नवगुण परम पुनीत तुम्हारे॥
सब प्रकार हम तुम सन हारे।
छमहु विप्र अपराध हमारे॥

(हे स्वामी, हमारी और आपकी बराबरी कैसी। कहाँ सिर और कहाँ पैर। हमारा तो सिर्फ़ 'राम' ऐसा छोटा नाम है पर आपका 'परशु' के साथ अर्थात् 'परशुराम' ऐसा नाम है। हमारा तो धनुष ही एक गुण है पर आपमें तो बड़े पवित्र नौ गुण हैं। हे ब्राह्मण देवता, मैं आपसे सब प्रकार हारा हुआ हूँ, आप मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये।)

यहीं तक नहीं। हनुमान जी कैसे प्रतापी, वीर और बली थे यह लङ्का के जलाने, रावण के बेटे को मारने और धवलगिरि पहाड़ उठा लाकर लक्ष्मण जी के जिलाने से यह तुम लोगों को भली भाँति मालूम होगा। वे हनुमान जी अपनी पहचान इस प्रकार बतलाते हैं—

प्रात नाम जो लेइ हमारा।
ता दिन ताहि न मिले अहारा॥

(जो भोर के समय मेरा नाम लेता उसको उस रोज भोजन तक नहीं मिलता अर्थात् मैं नीच से भी नीच और गया बीता हूँ।)

गोस्वामी जी ने ऐसे २ पात्रों के द्वारा विशेष २ अवस्था में नम्रता के गुण को व्यवहार का रूप दे दिया है। इस गुण को कैसे काम में लाना चाहिये, यह प्रत्यक्ष आँखों के सामने रख दिया है।

बलिहारी है उन मिट्टी की मूर्तियों और कठपुतलों को जो रामायण पढ़कर भी ऐसी २ शिक्षा नहीं लेते और न कुछ रहने पर भी घमंड के मारे ऐंठे फिरते हैं।

आत्मगौरव

जहाँ नम्रता का गुण होना चाहिये वहाँ आत्मगौरव का भी ख्याल होना बहुत जरूरी है। जहाँ नम्र होना हो पर जहाँ अपनी तथा अपने कुल आदि की अनुचित निन्दा होती हो वहाँ नम्र बने रहना उचित नहीं है। वहाँ जिस प्रकार अपना गौरव—अपनी प्रतिष्ठा बनी रहे वह उपाय करना चाहिये। यही बड़ों का काम है।

आत्मगौरव या आत्ममर्यादा से यह न समझना चाहिये कि अगर ऐसा करूँ तो मैं घमंडी कहाऊँगा। घमंड या अभिमान एक चीज है और आत्मगौरव दूसरी चीज। दोनों एक नहीं है। कोई एक लड़का एक दूसरे लड़के से कहे कि तुम तो बड़े बुद्धिमान् हो और वह लड़का कह बैठे कि हाँ मैं जरूर बुद्धिमान् हूँ। उसका यह कहना घमंड कहलायगा। पर यदि उससे तुम यह कहो कि तुम्हारी गिनती तो लड़कों में कुछ नहीं है। इसका जो वह यह उत्तर दे कि क्यों? मैं क्या किसी से कम परिश्रम करता हूँ या बहुत कम नम्बर पाता हूँ या किसी से कम समझता हूँ तो यह

उसका घमंड नहीं कहलायगा बल्कि आत्मगौरव। क्योंकि वह क्या है, इस बात को दिखला देना चाहता है न कि उस पर वह फूला हुआ है। इसी को कहते हैं—आत्मगौरव।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने जिस प्रकार नम्रता का नमूना दिखलाया है उसी प्रकार आत्मगौरव का भी। देखो—

सीता जी के धनुषयज्ञ में बड़े बड़े राजा आये थे। राम और लक्ष्मण भी उसमें जा बैठे थे। जब किसी राजा से धनुष न टूटा तब जनकराज को बड़ा पछतावा हुआ। उन्होंने दुःख के साथ कहा कि—

वीर-विहीन मही मैं जानी।

(मैंने समझ लिया कि पृथ्वी में अब कोई वीर नहीं रहा।)

जनक जी का यह साधारण सा वचन लक्ष्मण जी से सहा नहीं गया। वे बाँकुड़े वीर बाल सिंह के समान गर्जते हुए बोले—

रघुबंशिन महँ जहँ कोउ होई।
तेहि समाज अस कहै न कोई॥
कही जनक जस अनुचित बानी।
बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥

(जिस समाज में कोई रघुवंशी होगा उसमें ऐसा कोई नहीं कह सकता। रघुकुल के मणि अर्थात् रामचन्द्र जी के रहते ही जैसी अनुचित बात जनक जी ने कही है।)

लक्ष्मण जी का यह कहना, रघुवंश की प्रतिष्ठा करना और भाई रामचन्द्र के बाहुबल के सामने धनुष को कुछ न समझना कोरी बकवाद की बात ही थी? नहीं। यह उनके वंश का आत्म-गौरव है, उनकी जाति का आत्माभिमान है और हमारे लिये तुलसीदास जी की आत्मप्रतिष्ठा की शिक्षा है।

जिस प्रकार परशुराम के कठोर वचन सहने में रामचन्द्र जी की सहिष्णुता—बात बर्दाश्त करने की ताक़त झलकती है और नम्र वचन बोलने में नम्रता प्रकट होती है। उसी प्रकार उनके इन वचनों से आत्मप्रतिष्ठा भी झलकती है।

जो मैं निदरहिं विप्रवर, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तो अस को जग सुभट जेहि, भयवश नावहिं माथ॥

(हे परशुराम जी, यदि हम ब्राह्मण जान आपका निरादर करते हों तो ऐसा कौन संसार में वीर है जिससे डरकर उसके आगे सिर झुकावें।)

जो रण हमहिं प्रचारहिं कोऊ।
लरहि सुखेन काल किन होऊ॥

(लड़ाई में जो कोई हमें छेड़े—लड़ने को ललकारे फिर वह भले ही साक्षात् काल ही क्यों न हो हम प्रसन्न हो उससे भी लड़ेहींगे।)

कहौं स्वभाव न कुलहिं प्रशंसी।
कालहुँ डरहिं न रण रघुवंशी॥

(मैं अपने कुल का स्वभाव कहता हूँ, कुछ बड़ाई नहीं करता। रघुवंशी युद्ध में काल से भी नहीं डरते।)

यह सब कहना आत्मगौरव और आत्मप्रतिष्ठा के सिवा और कुछ नहीं है। और आगे के उदाहरण देखो।

चित्रकूट के पास भरत जी सेना के साथ जा पहुँचे। लक्ष्मण जी के मन में सन्देह हुआ। उनकी भौंहें तन गयीं, ओंठ फड़फड़ाने लगे। उनके मुँह से एक व एक निकल पड़ा।

क्षत्रि जाति रघुकुल जनम, राम अनुज जग जान।

(संसार जानता है कि हम क्षत्रिय जाति के हैं; रघुकुल में जनमें हैं और श्रीरामचन्द्र के छोटे भाई हैं।)

यह कहना क्या आत्मगौरव नहीं है। मैं किस जाति का हूँ, किस कुल का हूँ, मेरे माता पिता तथा बड़े भाई कौन हैं और मैं कौन हूँ, इसका ज्ञान आत्माभिमान आत्मप्रतिष्ठा नहीं तो और क्या है? इन बातों का खयाल करने वाला सचमुच आत्म-गौरवी है।

यह जान करके भी कि सुग्रीव को रामचन्द्र ऐसे सहायक मिल गये हैं, अपनी स्त्री तारा के बार बार विनती के साथ समझाने पर वालि का सुग्रीव से सन्धि—मेलमिलाप न करना, उलटे उसे मारना और लड़ने के लिये ललकारना, राम की सहायता

को कुछ भी परवाह न करना, बाण खाकर पृथ्वी पर गिरने पर भी अपने दुःख और दर्द का कुछ खयाल न करते हुए राम के कामों की निन्दा करना आदि क्या उसकी किसी प्रकार की भूल थी? नहीं, कभी नहीं।

वह आत्माभिमानी था। उसे अपनी प्रतिष्ठा, मर्यादा और गौरव का ख़याल था। मैं क्या हूँ, इस बात को भली भाँति जानता था। उसने अपने छोटे भाई की कृपा पर अपना गौरव छोड़ अपने को धूल में मिलाना नहीं चाहा। जब वह अपने भाई को ही इस विषय में कुछ नहीं समझता तो उसके सहायक को कौन पूछे—वह परमेश्वर ही क्यों न हो। इसी का नाम है आत्मगौरव।

ऐसे ही रावण की सभा में जाकर अङ्गद का पैर रोपना और रावण का—

निज भुज बल मैं रार बढ़ावा।

(मैंने अपनी बाहों के बल पर विश्वास रख के यह झगड़ा बढ़ाया है) कहना आत्मगौरव से खाली नहीं था।

इन सब उदाहरणों से साफ झलकता है कि कवि के मन में आत्मगौरव का बड़ा खयाल था और इसकी ओर समाज को अच्छी तरह झुकाने की चेष्टा करने से बाज़ नहीं आये। गोस्वामी जी ने ऐसे २ उपदेशों को एक दो जगह नाम ही लेकर नहीं छोड़ दिया है बल्कि बार बार मौके पर दोहराया तेहराया है और आँखों के सामने झलका दिया है। अब हम तुम उस पर ध्यान न दें तो क्या चारा है।

जानकी का पतिप्रेम

उसी दिन उसी क्षण जानकी जी ने वन जाने की तैयारी कर ली जिस क्षण उन्होंने रामचन्द्र के वन जाने की बात सुनी। इसमें न तो किसी प्रकार का कोई विचार करना था, न तो किसी से पूछपाछ कर सलाह लेनी थी और न किसी के रोके रुकना था। सासुओं ने सीता को लाख समझाया पर वे अपने विचार से तिल भर भी नहीं टलीं। राजा दशरथ ने वन जाने को मना किया और सीता के रहने से अपने सुख शांति रहने तथा धैर्य रखने की बात कह कर ठहर जाने को कहा पर सीता ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। रामचन्द्र ने बहुत समझाया बुझाया, जंगल के डरावने जीवजन्तुओं के नाम लेकर डराया धमकाया पर जानकी टस से मस न हुईं। उन्होंने जंगल के कठिन कष्टों के नाम ले लेकर जाने का मना किया और अयोध्या में रहने को आज्ञा दी पर जानकी ने उनके वचनों के ऐसे मीठे शब्दों में उत्तर दिये कि रामचन्द्र का मुँह ही बन्द हो गया।

तुम ही बतावो कि रामचन्द्र इसका क्या उत्तर दे सकते थे—

मैं सुकुमार, नाथ वन योगू।
तुमहि उचित तप, मो कहँ भोगू॥

(हाँ, मैं सुकुमार हूँ—कोमल हूँ, नाथ, आप वन के योग्य हैं अर्थात् सुकुमार नहीं हैं। तुमको तप करना उचित है अर्थात् तपस्वी का भेष बना तुम जंगल २ मारे फिरो और मैं राजमहलों में रहकर चैन उड़ाया करूँ। क्या कहना है।)

अन्त में आज्ञा देनी ही पड़ी—

परि हरि सोच चलहु वन साथा।

(सोच छोड़ो और वन जाने को तैयार हो।)

जब सुमन्त्र ने लौटने के समय राजा का सन्देशा कहा तब रामचन्द्र ने जानकी को अयोध्या लौट जाने का आग्रह किया। जानकी जी ने फिर नम्र होकर पूछा—

प्रभु करुणामय अन्तर्यामी।
तनु तजि छाँह रहत किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु विहाई।
कह चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई॥

हे स्वामी, आप दयालु हैं और बड़े विचार करने वाले हैं। भला बताइये तो शरीर छोड़ कर कहीं अलग छाया छेंके रह

सकती है ? सूर्य को छोड़कर प्रभा—चमक जाती है ? चन्द्रमा को छोड़कर चाँदनी कहाँ जाती है। मतलब यह कि तुमको छोड़कर मैं कहीं जाने वाली नहीं हूँ।)

अन्त में सीता को अपने संग राम जी को ले ही जाना पड़ा।

वन में जाकर जानकी जी ने सारे दुःखों को हँसी खेल समझ लिया। उनका मुँह कभी मलीन नहीं हुआ और न उनके लिलार पर कभी चिन्ता की रेखा ही दीख पड़ी। जबतक वे रामचन्द्र जी के साथ रहीं तब तक स्वामी रामचन्द्र के चरणों की सेवा का सुख लूटती रहीं। तुलसीदास जी ने सीता की पतिसेवा का कैसा अच्छा चित्र खींचा है—

राम संग सिय रहहिं सुखारी।
पुर परिजन गृह सुरति बिसारी॥
छण छण पिय-विधु-वदन निहारी।
प्रमुदित मनहुँ चकोर-कुमारी॥
नाह नेह नित बढ़त विलोकी।
हर्षित रहत दिवस जिमि कोकी॥
सिय मन रामचरण अनुरागा।
अवध सहस सम वन प्रिय लागा॥

पर्णकुटी प्रिय पीतम संगा।
प्रिय परिवार कुरंग विहंगा॥
सास ससुर सम मुनि-तिय मुनिवर।
अशन अमिय सम कंद मूल फर॥

(सीता जी श्रीरामचन्द्र के साथ ऐसी प्रसन्न होकर रहती हैं कि उन्हें नगर, परिवार और घर की कुछ भी सुधि नहीं रहती। हरेक छन पति का चन्द्रमा के समान मुख देखकर ऐसी प्रसन्न होती हैं जैसे चकोर की छोकड़ी चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न होती है। वे अपने ऊपर स्वामी का प्रेम चढ़ते देख ऐसी प्रसन्न रहती हैं जैसे चकई दिन में प्रसन्न रहती है। सीता जी को रामचन्द्र के चरणों में प्रेम होने के कारण अयोध्या जी से हजार गुना वन अच्छा लगता है। पति के साथ रहने के कारण पत्तों की झोपड़ी भी बहुत प्यारी मालूम हो रही है। हरिण और पक्षी प्यारे परिवार के समान मालूम होते हैं। मुनि और मुनि की स्त्रियाँ उन्हें ऐसी मालूम होती हैं जैसे सास ससुर हों तथा कंद, मूल फल का भोजन अमृत के समान जान पड़ता है।)

राम जी के वियोग में सीता जी को जो कष्ट हुआ वह हनुमान जी के कथनानुसार न कहने ही योग्य है।

सीता कर दुख विपति विशाला।
विनहिं कहे भल दीन-दयाला॥

(सीता को इतना दुःख, इतनी बड़ी भारी विपत्ति है कि उसका न कहना ही अच्छा है।)

जिन रामचन्द्र की विरहाग्नि में जलती हुई सीता ने रावण को सदा तृण की ओट से ऐसा ही उत्तर दिया है कि

श्यामसरोजदामसम सुन्दर।
प्रभुभुजकरिकरसम दशकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा।
सुनु शठ अस प्रमान पन मोरा॥

(रे रावण, सुन। मेरी तो ऐसी प्रतिज्ञा है कि रामचन्द्र की श्याम कमल की माला सी सुन्दर बड़ी बड़ी भुजायें ही मेरे कंठ में पड़ेंगी या तुम्हारी तेज़ तलवार।)

इसी से तुम जान लोगे कि पति के चरणों में सीता जी का कितना प्रेम था। उसका वर्णन कौन कर सकता है!

जिस जानकी की पवित्रता से अग्नि स्वयं पवित्र होती. उस जानकी की अग्नि-परीक्षा देने की बात सब के सामने कहते हुए राम ने उनका बड़ा अपमान किया था पर पति के चरणों में लवलीन सीता ने उस ओर कुछ भी खयाल न किया। राम की ओर उन्होंने एक बार तिरछी नज़र की और सीता को दहकती हुई आग को देखकर कुछ भी हर्ष वा भय मन में नहीं हुआ। उन्होंने आग के सामने हाथ जोड़कर और यह कह कर कि

जो मनवचक्रम मम उर माहीं।
तजि रघुनाथ आन गति नाहीं॥
तो कृशानु सबके गति जाना।
मोकहँ होउ श्रीखंड समाना॥

(यदि मन, वचन और कर्म से मेरे हृदय में रामचन्द्र के सिवा दूसरे किसी की पैठ न हो तो, सबकी हाल जाननेवाले अग्निदेव मेरे लिये चंदन के समान बन जावें।)

आग में पैठ गयीं। सचमुच सीता के लिये आग चन्दन की भाँति शीतल होगयी। सीता के शरीर से एक अपूर्व तेज निकलने लगा। सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। सीता ने अपने पतिव्रता धर्म के बल से रामचन्द्र के हृदय में अधिकार कर लिया।

प्रजारञ्जन

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में उस समय के एक आदर्श परिवार को लेकर केवल सामाजिक दशा को ही नहीं दिखलाया वरन् एक आदर्श सम्राट्-सबके ऊपर के राजा को लेकर राजा को किस प्रकार प्रजारञ्जन—प्रजाओं को प्रसन्न करना चाहिये, इसका बड़ा ही उत्तम आदर्श दिखलाया है। गोस्वामी जी की दृष्टि में उसके सम्बन्ध की छोटी से छोटी भी बात छूटने नहीं पायी है।

राजा दशरथ बुड्ढे होगये। उनसे उतने बड़े राज्य का देख-भाल अच्छी तरह नहीं होता। उसके इन्तज़ाम में ढीला सोली होने लगी। उन्होंने विचारा कि इसका बोझ अब किसी दूसरे पर डालना चाहिये। किसको राज का भार दें। जिसको देना चाहते हैं क्या लोग उसको पसन्द करेंगे? राजनीति और धर्मनीति से बड़ा पुत्र ही राज का अधिकारी हो सकता है। इसी नीति को उन्होंने कैकेयी से एक जगह कहा भी है।

मैं बड़ छोट बिचार करि, करत रहेउँ नृपनीति।

(मैं छोटे बड़े का विचार कर राजनीति के अनुसार काम करता था।)

कैकेयी ने भी इस बात को पुष्ट किया है। वह मंथरा से कहती है कि सुन, राजनीति यह है—

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई।

(बड़ा भाई मालिक होता है और छोटा उसका दास होकर रहता है।)

पर राजा दशरथ को राजनीति उतनी प्यारी नहीं थी जितनी प्रजाओं की प्रसन्नता। राजा ने रामचन्द्र को युवराज बनाना चाहा। मंत्री की भी इच्छा हुई। जिन्होंने सुना वे भी प्रसन्न हुए। पर राजा ने इन अपने अनुचर, सम्बन्धी तथा अन्यान्य लोगों की ओर ख़याल न किया—उनकी बातें सचों पर उनकी परवाह न की। राम बड़े हैं—हाँ, सब लोग चाहते हैं—चाहें, पर इससे क्या होता जाता है। प्रजा उनको चाहती है कि नहीं, यह बात देखना चाहिये। उन्होंने उनकी राय पर ही रामचन्द्र का राजतिलक होना छोड़ दिया। उन्होंने कहा—

जो पाँचहि मत लागे नीका।
करहु हर्षि हिय रामहि टीका॥

(अगर पाँच को—प्रजासमूह को, यह अच्छा मालूम हो तो, प्रसन्नता के साथ रामचन्द्र को राजतिलक दिया जाय।)

राजा के कहने का भाव यह कि रामचन्द्र के राजतिलक देने में जो और लोग—मंत्री वगैरह राय देते हैं वे तो एक प्रकार के नौकर हैं। वे तो अपने मालिक का मुँह देखकर ही काम करेंगे पर जो प्रजा हैं—मेरे नौकर नहीं, जिनको शासन—हुकूमत में रहना है वे राम को राजा बनाना चाहते हैं कि नहीं। क्योंकि उनकी सम्मति ही सबसे ऊपर है। ऐसा कोई काम नहीं होना चाहिये जो उनको पसन्द न हो।

राजा दशरथ ही को इस बात का ख़याल नहीं था कि राजा के चुनाव में भी प्रजा का अधिकार है और उनके दुख सुख की ओर राजा का ख़याल रहना बहुत उचित है किन्तु होनहार राजा रामचन्द्र को भी इस बात का पूरा पूरा ख़याल था। वे बिना राजा हुए भी प्रजाओं की हितचिन्ता करते थे और उसका ख़याल उन्हें बहुत था।

जब रामचन्द्र अयोध्या छोड़कर जंगल जाने को तैयार हुए। लक्ष्मण जी को खबर लगी। वे दौड़े हुए रामचन्द्र के पास पहुँचे। उन्होंने अपने को साथ ले चलने की प्रार्थना की। उस समय रामचन्द्र ने विचार किया कि राजा मेरे वियोग के कारण दुखी हैं। दूसरे वे बुड्ढे हुए। उनसे राजकाज सम्हलेगा नहीं। मुझे चौदह वर्ष वन में रहना है। भरत घर पर नहीं। न जाने कब वे आवें। इस दशा में लक्ष्मण अगर मेरे साथ वन जायँगे तो अवधवासियों की क्या दशा होगी। उनकी देखरेख कौन करेगा। राजा ही उनका रक्षक है। पर राजघराने की अवस्था यह हो गयी है।

क्या करें क्या न करें। यह सब कुछ सोच विचार करके उन्होंने लक्ष्मण जी को समझाना शुरू किया—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवशि नरक अधिकारी॥
रहहु करहु सबकर परितोषू।
नतरु तात होइहैं बड़ दोषू॥

(जिस राजा के राज में प्रजा दुख पाती है वह राजा अवश्य नरक में जाता है। इससे तुम घर रहकर सबको देखो भालो। यदि ऐसा न करोगे तो इसका बड़ा दोष होगा।)

क्या कोई राजा प्रजाओं के सुख दुख का बिना ख़याल किये ऐसा उपदेश दे सकता है? यदि नहीं तो इससे बढ़कर प्रजाओं के लिये राजा ख़याल ही क्या कर सकता है। इसी का नाम है प्रजा-रञ्जन—प्रजा का सब प्रकार से लालन पालन।

रामचन्द्र १४ वर्ष बनवास करके सीता के साथ अयोध्या लौट आये। भरत ने राम को राज्य सौंप दिया। राम राज्य करने लगे। राज्य में कहीं किसी प्रकार की अशान्ति नहीं थी। सब जगह अमन चैन था। पर रामचन्द्र को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने प्रजाओं के सुख दुख का वृत्तान्त जानने के लिये अपने गुप्त दूत भेजे। उन्होंने आकर यह संवाद दिया कि सब लोग आपकी प्रशंसा ही करते हैं। रामचन्द्र ने कहा कि हम प्रशंसा की

बात नहीं सुनना चाहते हैं। जो कोई मेरा दोष कहता हो वही कहो कि मैं वह दोष हटा दूँ जिससे उसको सन्तोष हो। नीच से भी नीच क्यों न हो उसका मन रखना मेरा कर्तव्य है।

एक दूत की ओर रामचन्द्र ने देखा। उन्हें मालूम हुआ कि यह कुछ कहना चाहता है पर डर के कारण नहीं कहता। उन्होंने उसे अभयदान दिया और कुछ भी क्यों न अपने सम्बन्ध की बात हो उसे कहने के लिये आग्रह किया। उसने कहा कि सब कोई तो प्रशंसा ही करते हैं पर एक धोबी यह कहता था कि राम ने उस सीता को फिर अपने घर में डाल लिया जो लङ्का में रावण के घर रही। उसकी अग्निपरीक्षा तो हुई पर वहाँ कौन देखने गया कि परीक्षा हुई कि नहीं। यह सुन रामचन्द्र सन्नाटे में आ गये।

रामचन्द्र ने अपने मन में ख़याल किया कि सीता को अपने घर में रखना उसको पसन्द नहीं है। मेरा एक काम एक प्रजा को पसन्द नहीं है। इससे उसके मन में दुःख है। यह उसका दुःख दूर कर देना चाहिये। उन्होंने लक्ष्मण को बुलाया और अपना मतलब उनसे कहा। लक्ष्मण जी के हृदय पर वज्र का सा वह वचन मालूम हुआ। बड़े भाई की आज्ञा थी। उसको टाल कैसे सकते थे। राजी होगये। रामचन्द्र की आज्ञा थी कि भुलावा देकर जानकी को जंगल में ले जावो और वहाँ मेरा मतलब कहकर छोड़ आओ। अंत में ऐसा ही लक्ष्मण को करना पड़ा। उस समय सीता गर्भिणी थीं। तुरत ही सन्तान होने को था। पर रामचन्द्र ने एक प्रजा का मन रखने के लिये गर्भिणी सीता की कुछ भी परवाह नहीं की।

सीता को उन्होंने इस भाँति त्याग दिया जैसे अपने घर से कोई दरिद्रा को दूर कर दे। इसी का नाम है प्रजारञ्जन। इसी प्रकार के कामों से राजा राजा कहलाने योग्य होता है।

एक ब्राह्मण का असमय में ही लड़का मर गया। वह अपने लड़के को लिये रामचन्द्र के द्वार पर आया और बोला कि राम तुम पापी हो। राजा के पापी हुए बिना कोई बुरा काम नहीं होता। तुम पापी भले न हो पर तुम्हारे राज में कहीं पाप जरूर होरहा है। यदि ऐसा न होता तो बाप के रहते बेटा कभी न मरता। राम ब्राह्मण को धैर्य धराकर उसके पुत्र के जिलाने का उपाय सोचने लगे। उन्होंने देखा कि मेरे राज में कहाँ पाप हो रहा है। उन्होंने जाकर उस पाप को हटाया और इधर ब्राह्मण का लड़का जी उठा। ब्राह्मण आशीर्वाद देता चला गया। इसी तत्परता से प्रजा का पालन होता है।

तुलसीदास जी ने भी कई जगह पर राजा के अच्छे होने से प्रजा के सुख का वर्णन किया है। वे लिखते हैं—

सुखी प्रजा जस पाइ सुराजा।
प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥

(सुन्दर राजा को पाकर ही प्रजा बढ़ती है। प्रजारञ्जन से बढ़ कर राजा का कोई धर्म नहीं है!)
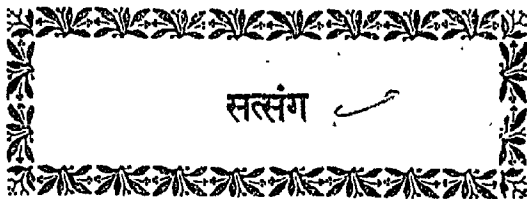
सत्संग

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने सत्संग की महिमा वालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक गायी है उसका वर्णन कौन कर सकता है। उन्होंने वार वार सत्संग करने का और कुसंगति के छोड़ने का उपदेश दिया है। इन दोनों वातों पर उन्होंने वड़ा ही ज़ोर दिया है। जगह जगह उन्होंने इसका भलीभाँति वर्णन किया है। सच पूछिये तो सुसंग में रहने का जो फल होता है वह किसी से छिपा नहीं है। कुसंगति का फल भी वैसा ही प्रत्यक्ष है। इस विषय में बहुत लिखना बेकार है। 'हाथ कंगन को आरसी क्या'। तुम गोस्वामी जी के शब्दों में ही इस उपदेश का मनमाना मजा लूटो।

हानि कुसंग, सुसंगति लाहू।
लोकहु वेद विदित सब काहू॥
गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा।
कीचइ मिलइ नीच जल संगा॥

साधु असाधु सदन शुक सारी।
सुमिरहिं राम देहिं गन गारी॥
धूम कुसंगति कारिख होई।
लिखिय पुरान मंजु मसि सोई॥

(कुसंग—बुरों के संग से हानि ही होती है, यह बात शास्त्र और संसार दोनों में प्रसिद्ध है—सब कोई इस बात को जानते हैं। देखिये, हवा के साथ होने से धूल आकाश में चढ़ जाती है और नीच के संग से पानी कीचड़ में जाकर मिल जाता है। सज्जन और असज्जन के घर पोसे गये तोते मैनों का तो खयाल करो। सज्जन के घर तोते राम २ कहा करते हैं और असज्जन के घर के तोते नित बुरी बुरी बातों को सुनकर गाली बका करते हैं। कुसंगति में पड़कर धुआँ कालिख हो जाता है और वही कालिख सुसंग में पड़कर सुन्दर स्याही बन जाता है जिससे शास्त्र और पुराण लिखे जाते हैं।)

कहिये सुसंग कुसंग का कैसा भला बुरा फल है। फिर देखिये—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताही सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥

(एक पलड़े पर स्वर्ग और मुक्ति का सुख रक्खा जाय और एक पलड़े पर सतसंग के थोड़े समय का सुख रक्खा जाय तो इससे बढ़कर उन सबों का सुख कभी नहीं बराबरी कर सकता है।) इसी से तुलसीदास जी ने कहा है कि—

सतसंगति दुर्लभ संसारा ॥

(सतसंग संसार में बड़ा ही दुर्लभ है।)

सुमित्र

जे न मित्रदुख होंहि दुखारी।
तिनहिं विलोकत पातक भारी॥
निजदुख गिरिसम रजकै माना।
मित्र के दुख रजमेरु समाना॥
जिन्हके असि मति सहज न आई।
ते शठ हठि कस करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।
गुण प्रगटे अवगुणहिं दुरावा॥
देत लेत मन शंक न धरई।
बल अनुमान सदा हित करई॥
विपति काल कर सतगुण नेहा।
श्रुति कह संत मित्र गुण एहा॥

(जो मित्र के दुःख से दुखी नहीं होता, उसके देखने से भी बड़ा पाप लगता है। मनुष्य अपने पहाड़ जैसे दुःख को तो रज के समान समझे और मित्र के धूल के समान दुःख को पहाड़ के समान समझे। जो इस प्रकार विचार नहीं करते वे मूर्ख आग्रह के साथ क्यों मित्रता करते हैं। मित्र को चाहिये कि अपने मित्र को बुरे मार्ग से हटाकर अच्छे मार्ग पर चलावे और अपने मित्र के दोषों को छिपा कर उसके गुणों को ही प्रकट करे। मित्र को देने लेने में कभी कुछ शङ्का न करे और अपनी शक्ति भर उसकी सदा भलाई करे। जब मित्र पर विपत्ति आवे तो उससे सौगुना प्रेम प्रकट करे, ये ही अच्छे मित्रों के गुण हैं, वेद ऐसा ही कहता है।)

कुमित्र

आगे कह मृदुबचन बनाई।
पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहिगतिसम भाई।
अस कुमित्र परिहरिय भलाई॥
सेवक शठ नृप कृपण कुनारी।
कपटी मित्र शूलसम चारी॥

(जो सामने तो मीठी मीठी बातें करता है और पीठ पीछे मन में कुटिलता रख कर बुराई सोचता है। जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा हो, ऐसे मित्र को छोड़ देने ही में कुशल है।

क्योंकि शठ नौकर, कंजूस राजा, बुरी औरत और छली दोस्त, ये चारों शूल के समान दुखदायी हैं।)

सत्य महिमा

नहिं असत्य सम पातकपुंजा।
गिरि सम होंहि कि कोटिकगुंजा॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाये।
वेद पुराण विदित मुनि गाये॥

(असत्य—झूठ बोलने के समान और कोई पाप नहीं है। क्योंकि करोड़ों घुँघुचियाँ क्या पहाड़ के बराबर हो सकती हैं। जितने पुण्य हैं सब सत्य पर हैं। यह बात वेद-पुराण में प्रसिद्ध है और ऋषि-मुनि भी कहते हैं।)

धर्म न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुराण बखाना॥

(सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है, इस बात को वेद शास्त्र पुराण, सब कहते हैं।)

आज्ञापालन

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी।
सुनि मन मुदित करिय भल जानी॥

उचित कि अनुचित किये विचारू ।
धर्म जाई सिर पातक भारू ॥

(गुरु, पिता, माता और स्वामी के हित वचन को सुन कर और अच्छा जानकर प्रसन्न मन से करना चाहिये। यह न सोचना चाहिये कि यह बात उचित है वा अनुचित। ऐसा करने से धर्म नष्ट होता है और सिर पर पाप चढ़ता है।)

मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करिय सुभाय।
लहेउ लाभ तिन जन्म के, नतरु जन्म जग जाय ॥

(माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को सिर पर धारण कर प्रसन्न मन से करना चाहिये। ऐसा करने से तीन जन्म धरने का जो लाभ है वह हो जाता है और नहीं तो व्यर्थ ही जन्म चला जाता है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साँई ।
सेइय सकल प्राण की नाँई ॥

(गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, इनकी सेवा प्राण के समान करना चाहिये। मतलब यह कि अपने प्राणों को जिस भाँति पोसते, पालते, बचाते हैं वैसे ही उनकी रक्षा करनी चाहिये।

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.

बालमित्र-मासिक-ग्रन्थमाला के उद्देश्य

१—हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेशों के गाँव गाँव में शिक्षा फैलाना और प्रत्येक बालक-बालिकाओं को सुयोग्य बनाना।

२—बालक बालिकाओं के मन के मोतविक महीने उनके हाथों में एक २ किताब देकर उनके मन को उन्नत बनाना।

३—स्कूलों में जिन बातों की शिक्षा नहीं दी जाती और जिनकी शिक्षा होना बहुत ही आवश्यक है, उनकी शिक्षा देना।

४—उदार महान् शिक्षा के मार्ग को सुगम करना और पुस्तकों की सुन्दरता और सरलता से मनोरञ्जन के साथ बालक-बालिकाओं को पढ़ने के लिये उत्सुक करना।

५—बालकपन से ही बालक बालिकाओं के मन में पढ़ने-लिखने, जानने-सुनने तथा सोचने समझने का एक ऐसा संस्कार पैदा कर देना जिससे वे समय पाकर आप ही आप अपना जीवन मार्ग साफ कर लें कि उन्हें फिर दूसरे का मुँह देखना न पड़े।

६—बालकों को सदाचार का पाठ पढ़ाना, सत्य के पथ पर चलाना और उनके मन में सुनीति का बीज बोना इस ग्रन्थमाला का एक प्रधान उद्देश्य रहेगा।

७—बालक-बालिकाओं के जानने-सुनने लायक क्या पुरानी और क्या नयी, संसार की सारी बातें इस ग्रन्थमाला के द्वारा सुनायी और समझायी जायँगी।

८—इस ग्रन्थमाला में ऐसे ही ग्रन्थ रहेंगे जिनके पढ़ने से बालक-बालिकाओं को आवश्यक ज्ञान के लिये किसी अन्य ग्रन्थमाला के पढ़ने की आवश्यकता न रहेगी।

९—प्रत्येक पुस्तक के कागज उत्तम, छपाई साफ और पृष्ठ ६४ के लगभग होंगे प्रबन्ध हो जाने से पुस्तकों में चित्र भी दिये जायँगे।